स्वर्णिम भारत – प्रारम्भ से 1206 ई. तक

भारत का इतिहास एवं संस्कृति अपने प्रारम्भिक काल से ही गौरवशाली रही है। भारत 'विश्व गुरु' एवं 'सोने की चिड़िया' कहलाता था। सम्पूर्ण विश्व को परिवार के रूप में मानना (वसुधैव कुटुम्बकम्) तथा सभी के कल्याण व स्वास्थ्य की कामना (सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया) करना हमारा आदर्श है।

उत्खनन और पुरातात्विक अवशेषों के आधार पर भारतीय संस्कृति का विश्वव्यापी स्वरूप दिखाई देता है। समुद्र पार भारतीय प्रदेशों को दीपान्तर कहा जाता था। शक्तिशाली जलयानों में यात्रा करके भारतीय ब्रह्मदेश, श्याम, इण्डोनेशिया, मलेशिया, आस्ट्रेलिया, बोर्निओ, फिलीपींस, जापान व कोरिया तक पहुँचे और वहाँ अपना राजनैतिक व सांस्कृतिक साम्राज्य स्थापित किया। प्राचीन भारत में हमारे बन्दरगाह एवं नाविक शक्ति अत्यधिक विकसित थी। सिन्धु नदी में छः हजार वर्ष पूर्व चलने वाले जलयानों का उल्लेख विद्वानों ने किया है। भारतीय जल व थल दोनो मार्गों से विश्व के विभिन्न देशों में पहुँचे और वहाँ के निवासियों को अपने धर्म व संस्कृति से परिचित कराया। इन साहसी वीरों ने भारतीय दर्शनविज्ञान ज्योतिष, स्थापत्य, युद्धशास्त्र, नीतिशास्त्र, संगीत व वैदिक ग्रन्थों का विश्व में प्रसार किया। भारत की प्राचीन सभ्यताओं का हमें प्रारम्भ से ही विकसित स्वरूप दिखाई देता है।

सिन्धु–सरस्वती सभ्यता, वैदिक सभ्यता, रामायण एवं महाभारत कालीन सभ्यता एवं संस्कृति का काल भी भारत का स्वर्णिम काल रहा है। वेदों को विश्व ज्ञानकोश के रूप में जाना जाता है। सिन्धु–सरस्वती सभ्यता स्थापत्य की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट सभ्यता है। रामायण और महाभारत भारत के विभिन्न आदर्श एवं नीति ग्रन्थों के रूप में प्रसिद्ध रहे है। हमारा महाजनपद काल गणतंत्रात्मक एवं संवैधानिक व्यवस्था का आदर्श रहा है।

उत्तरवैदिक काल में हमें विभिन्न जनपदों का अस्तित्व दिखाई देता है। इस काल तक पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार में लौह का व्यापक रूप से उपयोग किया जाने लगा था। लौह तकनीक ने लोगों के भौतिक जीवन में बड़ा परिवर्तन कर दिया तथा इससे समाज में स्थायी जीवन यापन की प्रवृत्ति सुदृढ़ हो गयी। कृषि, उद्योग, व्यापार, वाणिज्य आदि के विकास ने प्राचीन जनजातीय व्यवस्था को जर्जर बना दिया तथा छोटे–छोटे जनों का स्थान बड़े जनपदों ने ग्रहण कर लिया। ईसा पूर्व छठी शताब्दी तक आते–आते जनपद, महाजनपदों के रूप में विकसित हो गये।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व के प्रारम्भ में उत्तर भारत में सार्वभौम सत्ता का पूर्णतया अभाव था। सम्पूर्ण भारत अनेक स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त था। ये राज्य उत्तर–वैदिककालीन राज्यों की अपेक्षा अधिक विस्तृत तथा शक्तिशाली थे।

(i) महाजनपद काल (600–325 ई.पू.)

छठी शताब्दी ई.पू. में उत्तर भारत में अनेक विस्तृत और शक्तिशाली स्वतंत्र राज्यों की स्थापना हुई, जिन्हें महाजनपदों की संज्ञा दी गई। बौद्ध ग्रंथ 'अगुत्तरनिकाय' के अनुसार उस समय 16 महाजनपद विद्यमान थे–

	महाजनपद		राजधानी
1.	काशी	:	वाराणसी
2.	कुरु	:	इन्द्रप्रस्थ
3.	अंग	:	चम्पा
4.	मगध	:	राजगृह या गिरिव्रज
5.	वज्जि	:	विदेह और मिथिला
6.	मल्ल	:	कुशावती (कुशीनारा)
7.	चेदि	:	शक्तिमती (सोत्थिवती)
8.	वत्स	:	कौशाम्बी
9.	कोशल	:	अयोध्या (बुद्धकाल में दो भाग, उत्तरी भाग की राजधानी – साकेत ; दक्षिणी भाग की राजधानी– श्रावस्ती)
10.	पांचाल	:	उत्तरी पांचाल की राजधानी – अहिच्छत्र, दक्षिणी पांचाल की राजधानी– कांपिल्य
11.	मत्स्य	:	विराटनगर
12.	शूरसेन	:	मथुरा (मेथोरा / शूरसेनाई)
13.	अश्सक	:	पोतन या पाटेली
14.	अवन्ति	:	उत्तरी अवन्ति की राजधानी – उज्जयिनी, दक्षिणी अवन्ति की राजधानी – महिष्मती
15.	गांधार	:	तक्षशिला
16.	कम्बोज	:	राजपुर / हाटक

उपर्युक्त 16 महाजनपदों में दो प्रकार के राज्य थे – राजतंत्र और गणतंत्र। कोशल, वत्स, अवन्ति और मगध उस समय सर्वाधिक शक्तिशाली राजतंत्र थे। छठी शताब्दी ई.पू. में अनेक गणतंत्रों का भी अस्तित्व था, जिनमें प्रमुख थे – कपिलवस्तु के शाक्य, सुंसुमारगिरि के भाग, अल्लकप्प के बुली, केसपुत्त के कालाम, रामग्राम के कोलिय, कुशीनारा के मल्ल, पावा के मल्ल, पिप्पलिवन के मोरिय, वैशाली के लिच्छवि और मिथिला के विदेह।

राजस्थान के प्रमुख जनपद –

वैदिक सभ्यता के विकासक्रम में राजस्थान में भी जनपदों का उदय देखने को मिलता है। यूनानी आक्रमण के कारण पंजाब की मालव, शिवी, अर्जुनायन आदि जातियाँ, जो अपने साहस और शौर्य के लिए प्रसिद्ध थीं, राजस्थान में आईं और यहीं पर निवास करने लगीं। इस प्रकार राजस्थान के पूर्वी भाग में जनपदीय शासन व्यवस्था का सूत्रपात हुआ।

प्रमुख जनपद ये थे –

जांगल –

वर्तमान बीकानेर और जोधपुर के जिले महाभारत काल में जांगलदेश कहलाते थे। कहीं–कहीं इसका नाम कुरू–जांगला और माद्रेय–जांगला भी मिलता है। इस जनपद की राजधानी अहिछत्रपुर थी, जिसे इस समय नागौर कहते हैं। बीकानेर के राजा इसी जांगल देश के स्वामी होने के कारण स्वयं को 'जांगलधर बादशाह' कहते थे। बीकानेर राज्य के राजचिह्न में भी 'जय जांगलधर बादशाह' लिखा मिलता है।

मत्स्य –

वर्तमान जयपुर के आस–पास का क्षेत्र मत्स्य महाजनपद के नाम से जाना जाता था। इसका विस्तार चम्बल के पास की पहाड़ियों से लेकर सरस्वती नदी के जांगल क्षेत्र तक था। आधुनिक अलवर और भरतपुर के कुछ भू–भाग भी इसके अन्तर्गत आते थे। इसकी राजधानी विराटनगर थी, जिसे वर्तमान में 'बैराठ' नाम से जाना जाता है। मौर्य शासक बिन्दुसार से पहले मत्स्य जनपद की स्पष्ट जानकारी का अभाव है। 'महाभारत' में कहा गया है कि शहाज नामक एक राजा ने चेदि तथा मत्स्य दोनों राज्यों पर शासन किया। मत्स्य प्रारंभ में चेदि राज्य का और कालान्तर में यह विशाल मगध साम्राज्य का अंग बन गया।

शूरसेन –

आधुनिक ब्रज क्षेत्र में यह महाजनपद स्थित था। इसकी राजधानी मथुरा थी। प्राचीन यूनानी लेखक इस राज्य को 'शूरसेनोई' तथा राजधानी को 'मेथोरा' कहते हैं। 'महाभारत' के अनुसार यहाँ यदु (यादव) वंश का शासन था। भरतपुर, धौलपुर तथा करौली जिलों के अधिकांश भाग शूरसेन जनपद के अन्तर्गत आते थे। अलवर जिले का पूर्वी भाग भी शूरसेन के अन्तर्गत आता था। वासुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण का संबंध इसी जनपद से था।

शिवि –

शिवि जनपद की राजधानी शिवपुर थी तथा राजा सुशिन ने उसे अन्य जातियों के साथ दस राजाओं के युद्ध में पराजित किया था। प्राचीन शिवपुर की पहचान वर्तमान पाकिस्तान के शोरकोट नामक स्थान से की जाती है। कालान्तर में दक्षिणी पंजाब की यह शिवि जाति राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र में निवास करने लगी।

चित्तौड़गढ़ के पास स्थित नगरी इस जनपद की राजधानी थी। मेवाड़ के अनेक स्थानों से शिवियों के सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। मन्दसौर के पास पाँच गुहालेख प्राप्त हुए हैं जिनसे शिवि जनपद का प्रसार पश्चिम से लेकर दक्षिण पूर्व तक होना ज्ञात होता है।

गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली के बावजूद इन जनपदों की राजसत्ता कुलीन परिवारों के हाथों में ही थी। इन परिवारों के प्रतिनिधि ही संथागार सभा के प्रमुखों के रूप में शासन की व्यवस्था करते थे। संथागार के सदस्य निर्धारित विषयों पर अपने विचार व्यक्त कर सकते थे। इसे 'अनयुविरोध' कहा जाता था। जो विषय विवादग्रस्त होते थे उन पर मतदान कराया जाता था। मतदान में बहुरंगी शलाकाएं काम में ली जाती थीं। संथागार जनपदों की सबसे बड़ी संस्था थी। राज्य की नीति के आधारभूत नियमों का निर्धारण इसी सभा में होता था। विशाल गणराज्यों में केन्द्रीय संथागार के अलावा प्रान्तीय संथागार भी होते थे। कालान्तर में गुटबाजी एवं आपसी फूट के कारण इन गणराज्यों का पतन हुआ। समकालीन राजतन्त्रों की विस्तारवादी नीति न्यूनाधिक रूप से इनके पतन के लिये उत्तरदायी थी।

(ii) मौर्य, शुंग, सातवाहन, गुप्त, वर्धन, पाल, राष्ट्रकूट, प्रतिहार, चोल, पल्लव एवं चालुक्य साम्राज्य

मौर्य वंश :–

सोलह महाजनपदों में से एक मगध का एक साम्राज्य के रूप में आविर्भाव हर्यक वंश के समय हुआ और कालान्तर में मगध ने प्रायः समस्त उत्तर भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

मौर्य वंश की स्थापना–

ईसा पूर्व 326 ई. के लगभग मगध के राजसिंहासन पर नंद वंश का एक विलासी राजा घननंद सिंहासनारूढ़ था। इस समय पश्चिमोत्तर भारत सिकंदर से आक्रांत था। प्रजा अपने राजा के अत्याचारों से भी पीड़ित थी। असह्य कर–भार के कारण राज्य के लोग उससे असंतुष्ट थे। इस परिस्थिति में मगध को एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी, जो विदेशी आक्रमण से उत्पन्न संकट को दूर करे और उसे एक सूत्र में बाँधकर चक्रवर्ती सम्राट के आदर्श को चरितार्थ करे। शीघ्र ही भारत के राजनीतिक नभमंडल पर कौटिल्य का शिष्य चंद्रगुप्त प्रकट हुआ तथा एक नवीन राजवंश 'मौर्यवंश' की स्थापना की।

चंद्रगुप्त मौर्य (322–298 ई.पू.) –

अपने गुरु चाणक्य की सहायता से अंतिम नंद शासक घननंद को पराजित कर 25 वर्ष की आयु में चंद्रगुप्त मौर्य मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ। चंद्रगुप्त मौर्य ने व्यापक विजय अभियान करके प्रथम अखिल भारतीय साम्राज्य की सीापना की। 305 ई. पू. में उसने तत्कालीन यूनानी शासक सिल्यूकस निकेटर को पराजित किया। संधि हो जाने के बाद सिल्यूकस ने चंद्रगुप्त से 500 हाथी लेकर पूर्वी अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और सिंधु नदी के पश्चिम का क्षेत्र उसे दे दिया। सिल्यूकस ने अपनी पुत्री का विवाह भी चंद्रगुप्त से कर दिया और मेगस्थनीज को अपने राजदूत के रूप में उसके दरबार में भेजा। चंद्रगुप्त के विशाल साम्राज्य में काबुल, हेरात, कंधार, बलूचिस्तान, पंजाब, गंगा–यमुना का मैदान, बिहार, बंगाल, गुजरात, विन्ध्य और कश्मीर के भू–भाग सम्मिलित थे। तमिल ग्रंथ 'अहनानूरू' और 'मुरनानुरू' से विदित होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने दक्षिण भारत पर भी आक्रमण किया था। वृद्धावस्था में उसने भद्रबाहु से जैन धर्म की दीक्षा ले ली। उसने

298 ई.पू. में श्रवणबेलगोला (मैसूर) में उपवास करके अपना शरीर त्याग दिया।

बिन्दुसार (298 ई.पू.—272 ई.पू.) : बिन्दुसार चंद्रगुप्त मौर्य का पुत्र व उत्तराधिकारी था जिसे यूनानी लेखक अमित्रोचेट्स कहते थे। वायुपुराण में इसे भद्रसार तथा जैन ग्रंथों में सिंहसेन कहा गया है। उसने सुदूरवर्ती दक्षिण भारतीय क्षेत्रों को भी जीतकर मगध साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। 'दिव्यावदान' के अनुसार इसके शासनकाल में तक्षशिला में दो विद्रोह हुए, जिसका दमन करने के लिए पहले अशोक और बाद में सुसीम को भेजा गया। बिन्दुसार के राजदरबार में यूनानी शासक एन्टीयोकस प्रथम ने डायमेकस नामक व्यक्ति को राजदूत के रूप में नियुक्त किया। प्लिनी के अनुसार मिस्र नरेश फिलाडेल्फस (मेली द्वितीय) ने 'डियानीसियस' नामक मिस्री राजदूत बिन्दुसार के दरबार में भेजा था।

अशोक (273—232 ई.पू.) : जैन अनुश्रति के अनुसार अशोक ने बिन्दुसार की इच्छा के विरुद्ध मगध के शासन पर अधिकार कर लिया। दक्षिण भारत से प्राप्त मास्की तथा गुज्जरा अभिलेखों में उसका नाम 'अशोक' मिलता है। अभिलेखों में अशोक 'देवानांपिय' तथा 'देवानांपियदस्सी' उपाधियों से विभूषित है। विदिशा की राजकुमारी से अशोक का विवाह हुआ तथा उससे पुत्री संघमित्रा तथा पुत्र महेन्द्र का जन्म हुआ। अशोक के अभिलेखों में उसकी रानी कारुवाकी का उल्लेख भी मिलता है।

राज्याभिषेक के सात वर्ष बाद अशोक ने कश्मीर तथा खोतान के अनेक क्षेत्रों को अपने साम्राज्य में मिलाया। उसके समय में मौर्य साम्राज्य में तमिल प्रदेश के अतिरिक्त समूचा भारत और अफगानिस्तान का काफी बड़ा भाग शामिल था। राज्याभिषेक के 8वें वर्ष (261 ई.पू.) में अशोक ने कलिंग पर आक्रमण किया, जिसमें 1 लाख लोग मारे गये। हाथीगुम्फा अभिलेख के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि उस समय कलिंग पर नंदराज शासन कर रहा था। इस व्यापक नरसंहार ने अशोक को विचलित कर दिया, फलतः उसने शस्त्रत्याग की घोषणा कर दी। मगध साम्राज्य के अंतर्गत कलिंग की राजधानी धौली या तोसाली बनायी गयी। श्रमण निग्रोध तथा उपगुप्त के प्रभाव में आकर अशोक बौद्धधर्म में दीक्षित हो गया और उसने भेरीघोष के स्थान पर धम्मघोष अपना लिया। बौद्ध धर्म स्वीकार करने से पूर्व 'राजतंरगिणी' (कल्हण) के अनुसार अशोक शिव का उपासक था। बाद में वह गुरु मोग्गलिपुत्रतिस्स के प्रभाव में आ गया। बराबर की पहाड़ियों में अशोक ने आजीवकों के निवास हेतु चार गुहाओं का निर्माण कराया, जिनके नाम थे – सुदामा, चापार, विश्वझोपड़ी और कर्ण। उसने राज्याभिषेक के 10वें वर्ष में बोधगया, तथा 20वें वर्ष में लुम्बिनी (कपिलवस्तु) की धम्मयात्रा की। रूम्मनदेई अभिलेख से विदित होता है कि उसने वहाँ भूमिकर की दर 1/6 से घटाकर 1/8 कर दी थी। अशोक के शिलालेखों में चोल, चेर, पांड्य और केरल के सीमावर्ती स्वतंत्र राज्य बताये गये हैं। राज्याभिषेक से सम्बन्धित लघु शिलालेख में अशोक ने स्वयं को बुद्धशाक्य कहा है।

धम्म : अशोक ने मनुष्य की नैतिक उन्नति हेतु जिन आदर्शों का प्रतिपादन किया उन्हें 'धम्म' कहा गया। अशोक के धम्म की परिभाषा दूसरे तथा सातवें स्तम्भलेख में दी गयी है। उसके अनुसार पापकर्म से निवृत्ति, विश्व कल्याण, दया, दान, सत्य एवं कर्मशुद्धि ही धम्म है। साधु स्वभाव होना, कल्याणकारी कार्य करना, पाप रहित होना, व्यवहार में मृदुता लाना, दया रखना, दान करना, शुचिता रखना, प्राणियों का वध न करना, माता—पिता व अन्य बड़ों की आज्ञा मानना, गुरु के प्रति आदर, मित्रों, परिचितों, सम्बन्धियों, ब्राह्मणों—श्रमणों के प्रति दानशीलता होना व उचित व्यवहार करना अशोक द्वारा प्रतिपादित धम्म की आवश्यक शर्ते हैं। तीसरे अभिलेख के अनुसार– धम्म में अल्प संग्रह और अल्प व्यय का भी विधान था। भब्रू शिलालेख के अनुसार अशोक ने बुद्ध के त्रिरत्नों बुद्ध, धम्म व संघ के प्रति अपनी आस्था प्रकट की।

साँची (रायसेन, मध्य प्रदेश) व सारनाथ (वाराणसी, उत्तर प्रदेश) लघु स्तंभ लेख में अशोक ने कौशाम्बी तथा पाटलीपुत्र के महामात्रों को आदेश दिया कि संघ में फूट डालने वाले भिक्षु—भिक्षुणियों को बहिष्कृत कर दिया जाये। प्रथम शिलालेख में यह विज्ञप्ति जारी की गयी कि किसी भी यज्ञ के लिए पशुओं का वध न किया जाये।

धम्म यात्रा : अशोक से पूर्व 'विहार यात्राएँ की जाती थीं, जिनमें राजा पशुओं का शिकार करते थे। अशोक ने इनके स्थान पर धम्म यात्रा का प्रावधान किया, जिसमें बौद्ध स्थानों की यात्रा तथा ब्राह्मणों, श्रमणों व वृद्धों को स्वर्ण दान किया जाता था।

अनुसंधान : अशोक के काल में राज्य के कर्मचारियों – प्रादेशिकों राज्जुकों और युक्तकों को प्रति पांचवे वर्ष धर्म—प्रचार हेतु यात्रा पर भेजा जाता था, जिसे लेखों में 'अनुसंधान' कहा गया है।

धम्ममहामात्र : राज्याभिषेक के 14वें वर्ष में अशोक ने धम्ममहामात्रों की नियुक्ति की, जिनके मुख्य कार्य थे – जनता में धम्म का प्रचार करना, उन्हें कल्याणकारी कार्य करने तथा दानशीलता के लिए प्रोत्साहित करना, कारावास से कैदियों को मुक्त करना या उनकी सजा कम करना, उनके परिवार की आर्थिक सहायता, करना आदि।

अभिलेख :— अशोक प्रथम शासक था, जिसने अभिलेखों के माध्यम से अपनी प्रजा को संबोधित किया, जिसकी प्रेरणा उसे ईरानी राजा दारा (डेरियस—प्रथम) से मिली थी। अशोक के अधिकांश अभिलेख ब्राह्मी लिपि में हैं, जबकि पश्चिमोत्तर भारत (मन्सेरा, शाहबाजगढ़ी) से प्राप्त उसके अभिलेख खरोष्ठी लिपि में हैं। टोपरा से दिल्ली लाये गये एक स्तम्भ पर सात लेख एक साथ उत्कीर्णित हैं। दूसरे व तीसरे अभिलेख में यवन नरेश आंटियोकस द्वितीय का उल्लेख है। अशोक के अभिलेखों को पढ़ने में पहली बार सफलता जेम्स प्रिंसेप को प्राप्त हुई।

तामपर्णी (श्रीलंका) के राजा तिस्स ने अशोक से प्रभावित होकर देवनांपिय की उपाधि धारण की थी। दूसरे राज्याभिषेक के अवसर उसने अशोक को आमन्त्रित भी किया था। अशोक का पुत्र महेन्द्र बोधिवृक्ष का एक भाग लेकर वहाँ पहुँचा। यहाँ से श्रीलंका में बौद्धधर्म का पदार्पण माना जाता है।

40 वर्ष शासन करने के बाद 232 ई.पू. में अशोक की मृत्यु हो गयी।

अशोक के उत्तराधिकारी तथा मौर्य साम्राज्य का पतन –

अशोक के बाद अगले 50 वर्ष तक उसके कमजोर उत्तराधिकारियों का शासन रहा। अशोक के बाद कुणाल राजा बना जिसे दिव्यावदान में 'धर्मविवर्धन' कहा गया है। 'राजतरंगिणी' के

अनुसार उस समय जलौक कश्मीर का शासक था। तारानाथ के अनुसार अशोक का पुत्र वीरसेन गांधार का स्वतंत्र शासक बन गया था। कुणाल के अंधा होने के कारण मगध का प्रशासन उसके पुत्र सम्प्रति के हाथ में आ गया था। कुणाल के पुत्र दशरथ ने भी मगध पर शासन किया। उसने नागार्जुनी गुफाएं आजीवकों को दान में दी थी।

वृहद्रथ अंतिम मौर्य सम्राट था। उसके ब्राह्मण मंत्री पुष्यमित्र शुंग ने उसकी हत्या करके मगध में शुंग वंश के शासन की नींव डाली।

मौर्य प्रशासन :–

मौर्य काल में भारत ने पहली बार केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था की स्थापना हुई। सत्ता का केन्द्रीकरण राजा में होते हुए भी वह निरंकुश नहीं होता था। कौटिल्य ने राज्य के सात अंग निर्दिष्ट किए हैं : राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, सेना और मित्र। राजा द्वारा मुख्यमंत्री व पुरोहित की नियुक्ति उनके चरित्र की भली–भाँति जाँच के बाद ही की जाती थी। इस क्रिया को उपधा परीक्षण कहा जाता था। ये लोग मंत्रिमंडल के अंतरंग सदस्य थे। मंत्रिमंडल के अतिरिक्त परिशा मंत्रिणः भी होता था, जो एक तरह से मंत्रिपरिषद् था।

केन्द्रीय प्रशासन : अर्थशास्त्र में 18 विभागों का उल्लेख है, जिन्हें 'तीर्थ' कहा गया है। तीर्थ के अध्यक्ष को 'महामात्र' कहा गया है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तीर्थ थे – मंत्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज।

समाहर्त्ता : इसका कार्य राजस्व एकत्र करना, आय–व्यय का ब्यौरा रखना तथा वार्षिक बजट तैयार करना था।

सन्निधाता (कोषाध्यक्ष) : साम्राज्य के विभिन्न भागों में कोषगृह और अन्नागार बनवाना। अर्थशास्त्र में 26 विभागाध्यक्षों का उल्लेख है, जैसे–कोषाध्यक्ष, सीताध्यक्ष (कृषि), पण्याध्यक्ष (व्यापार), सूत्राध्यक्ष (कताई, बुनाई), लूनाध्यक्ष (बूचड़खाना), विवीताध्यक्ष (चारागाह), लक्षणाध्यक्ष (मुद्रा जारी करना), मुद्राध्यक्ष, पौतवाध्यक्ष, बंधनागाराध्यक्ष, आटविक (वन विभाग का प्रमुख) इत्यादि। 'युक्त' व 'उपयुक्त' महामात्य तथा अध्यक्षों के नियंत्रण में निम्न स्तर के कर्मचारी होते थे।

प्रांतीय प्रशासन : अशोक के समय में मगध साम्राज्य के पांच प्रांतों का उल्लेख मिलता है – उत्तरापथ (तक्षशिला), अवंतिराष्ट्र (उज्जयिनी), कलिंग (तोसली), दक्षिणापथ (सुवर्णगिरि), मध्य देश (पाटलिपुत्र)। प्रांतों का शासन राजवंशीय 'कुमार' या 'आर्यपुत्र' नामक पदाधिकारियों द्वारा होता था। प्रांत विषयों में विभक्त थे, जो विषयपतियों के अधीन होते थे। जिले का प्रशासनिक अधिकारी 'स्थानिक' होता था, जो समाहर्त्ता के अधीन था। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई का मुखिया 'गोप' था, जो दस गाँवों का शासन संभालता था। समाहर्ता के अधीन प्रदेष्ट्रि नामक अधिकारी भी होता था, जो स्थानिक, गोप व ग्राम अधिकारियों के कार्यों की जाँच करता था।

नगर शासन : मेगस्थनीज के अनुसार नगर का शासन–प्रबंध 30 सदस्यों का एक मंडल करता था, जो 6 समितियों में विभक्त था– प्रथम समिति (उद्योग शिल्पों का निरीक्षण), द्वितीय समिति (विदेशियों की देख–रेख करना), तृतीय समिति (जन्म–मरण का लेखा–जोखा करना), चतुर्थ समिति (व्यापार/वाणिज्य; देखना), पांचवीं समिति (निर्मित वस्तुओं के विक्रय का निरीक्षण करना और छठी समिति (विक्रय मूल्य का दसवाँ भाग बिक्री कर के रूप में वसूलना), प्रत्येक समिति में पाँच सदस्य होते थे।

सैन्य व्यवस्था : सेना के संगठन हेतु पृथक सैन्य विभाग था, जो 6 समितियों में विभक्त था। प्रत्येक समिति में पाँच सदस्य होते थे। ये समितियाँ सेना के पाँच विभागों की देखरेख करती थीं ये पांच विभाग थे– पैदल, अश्व, हाथी, रथ तथा नौसेना। सैनिक प्रबंध की देखरेख करने वाला अधिकारी 'अंतपाल' कहलाता था। सीमांत क्षेत्रों का व्यवस्थापक भी 'अंतपाल' होता था। मेगस्थनीज (इंडिका) के अनुसार चंद्रगुप्त मौर्य के पास 6 लाख पैदल, पचास हजार अश्वारोही, नौ हजार हाथी तथा आठ सौ रथों से सुसज्जित विराट सेना थी।

न्याय व्यवस्था : सम्राट न्याय प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी होता था। निचले स्तर पर ग्राम न्यायालय थे, जहाँ ग्रामणी और ग्रामवृद्ध अपना निर्णय देते थे। इसके ऊपर संग्रहण, द्रोणमुख, स्थानीय और जनपद स्तर के न्यायालय होते थे। सबसे ऊपर पाटलिपुत्र का केन्द्रीय न्यायालय था। ग्रामसंघ और राजा के न्यायालय के अतिरिक्त अन्य सभी न्यायालय दो प्रकार के थे।

1. धर्मस्थीय : इन न्यायालयों में निर्णय का कार्य धर्मशास्त्र में निपुण तीन धर्मस्थ या व्यावहारिक और तीन अमात्य करते थे। धर्मास्थीय एक प्रकार की दीवानी अदालत होती थी। चोरी, डाके व लूट के मामले, जिन्हें 'साहस' कहा गया है, भी धर्मस्थीय अदालतों में रखे जाते थे। कुवचन, मान–हानि, मारपीट के मामले भी धर्मस्थीय न्यायालय में ही लाये जाते थे, जिन्हें 'वाक् पारूश्य' या 'दंड पारूश्य' कहा गया है।

2. कंटकशोधन : ये फौजदारी अदालतें थीं। तीन प्रदेष्ट्रि तथा तीन अमात्य मिलकर राज्य तथा व्यक्ति के मध्य विवादों का निर्णय करते थे। नगर न्यायाधीश को 'व्यावहारिक महामात्र' तथा जनपद न्यायाधीश को 'राज्जुक' कहते थे। चाणक्य के अनुसार कानून के चार मुख्य अंग हैं – धर्म, व्यवहार, चरित्र और शासन।

मौर्यकालीन समाज : कौटिल्य का अर्थशास्त्र, मेगस्थनीज कृत इंडिका तथा अशोक के अभिलेखों से मौर्यकाल की सामाजिक व्यवस्था की जानकारी मिलती है। कौटिल्य ने वर्णाश्रम व्यवस्था को सामाजिक संगठन का आधार माना है। कौटिल्य ने चारों वर्णों के व्यवसाय भी निर्धारित किए हैं। चार वर्णों के अतिरिक्त कौटिल्य ने अन्य जातियों, जैसे–निशाद्, पारशव, रथकार, क्षता, वेदेहक, सूत, चांडाल आदि का उल्लेख भी किया है।मेगस्थनीज की 'इण्डिका' में भारतीय समाज का वर्गीकरण सात जातियों में किया है– दार्शनिक, किसान, पशुपालक व शिकारी, कारीगर या शिल्पी , सैनिक, निरीक्षक, सभासद तथा अन्य शासक वर्ग। मेगस्थनीज ने अपने वर्गीकरण में जाति, वर्ण और व्यवसाय के अंतर को भुला दिया है।

मौर्यकाल में स्त्रियाँ की स्थिति को अधिक उन्नत नहीं कहा जा सकता, फिर भी स्मृतिकाल की अपेक्षा वे अधिक अच्छी स्थिति में थीं तथा उन्हें पुनर्विवाह व नियोग की अनुमति थी।

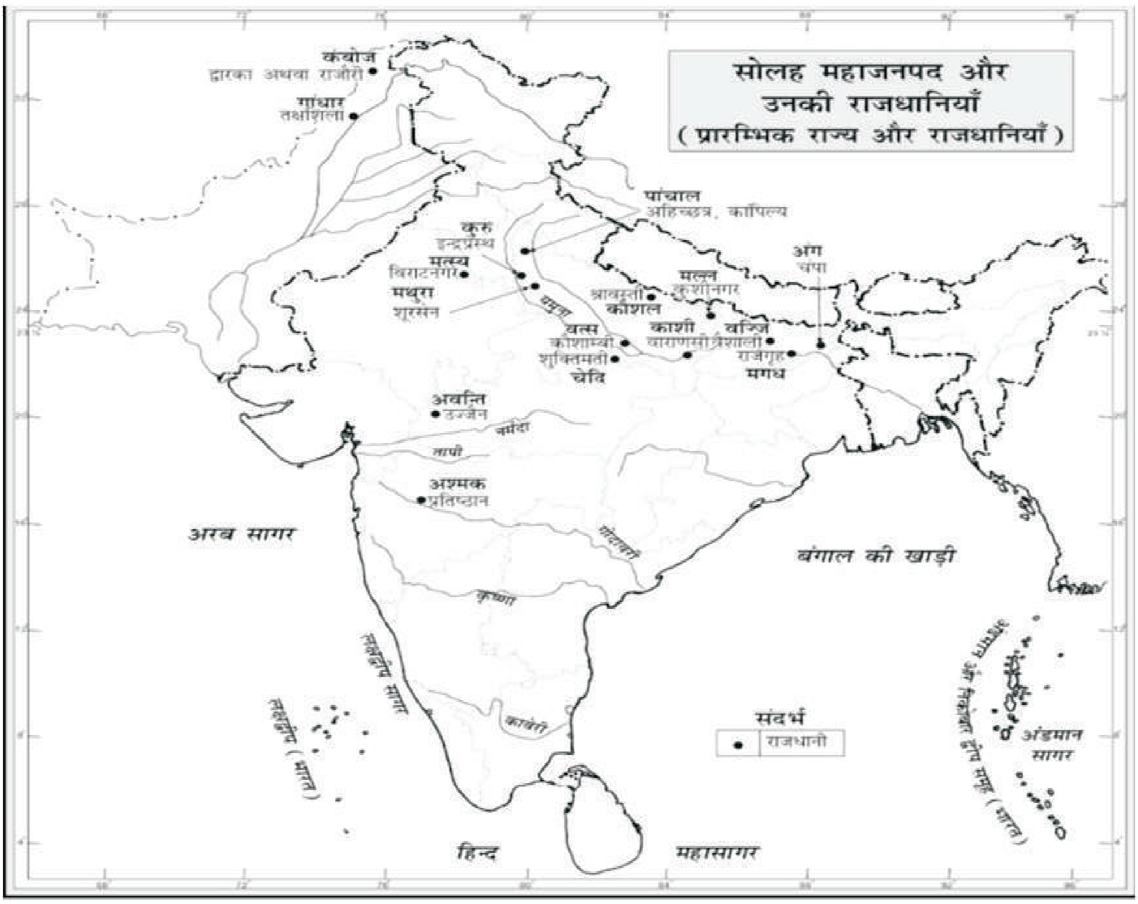

मानचित्र–1.1 महाजनपद

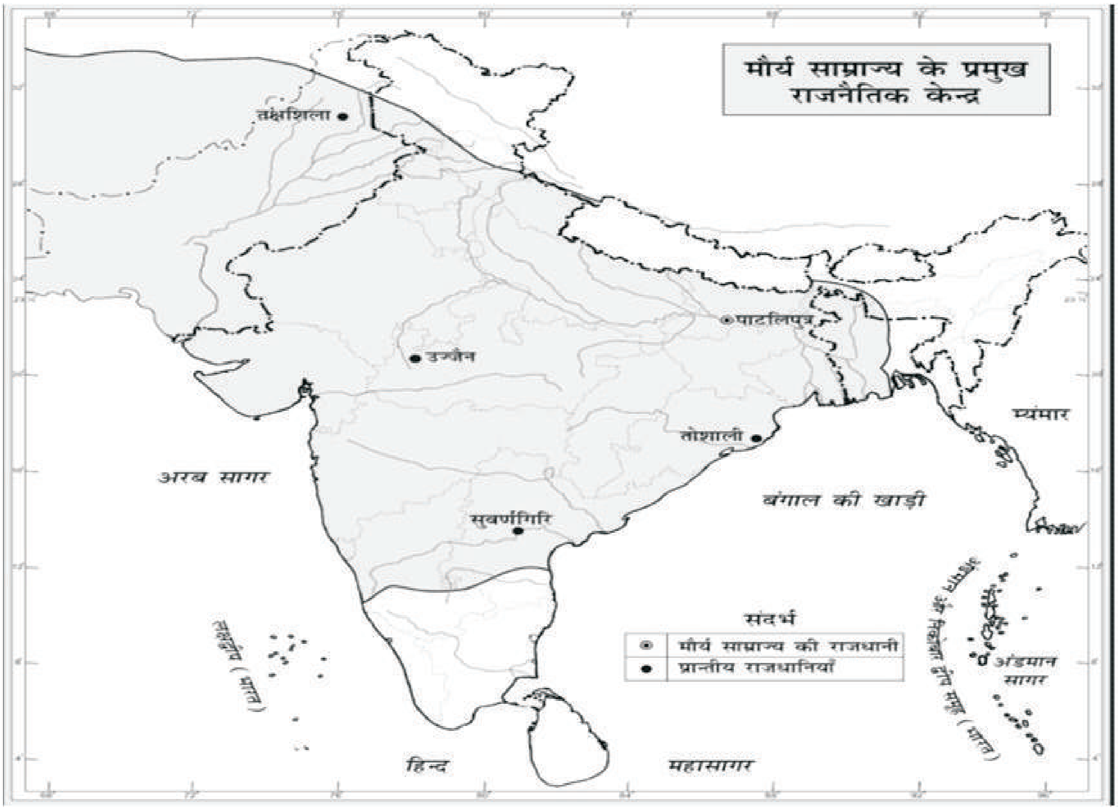

मानचित्र–1.2 मौर्य साम्राज्य

चित्र 1.3 साँची स्तूप

चित्र 1.4 अशोक स्तम्भ

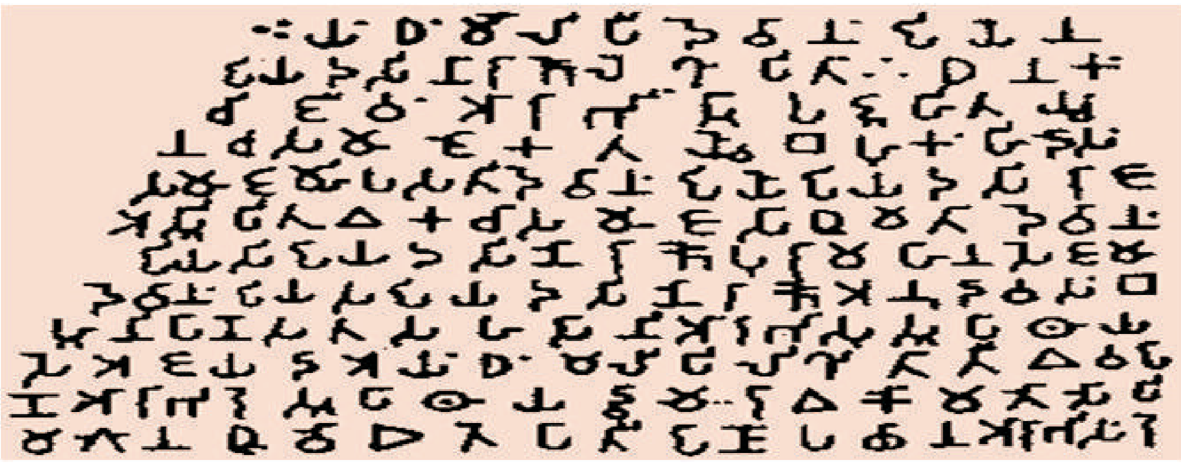

चित्र 1.5 अशोककालीन अभिलेख–लिपि

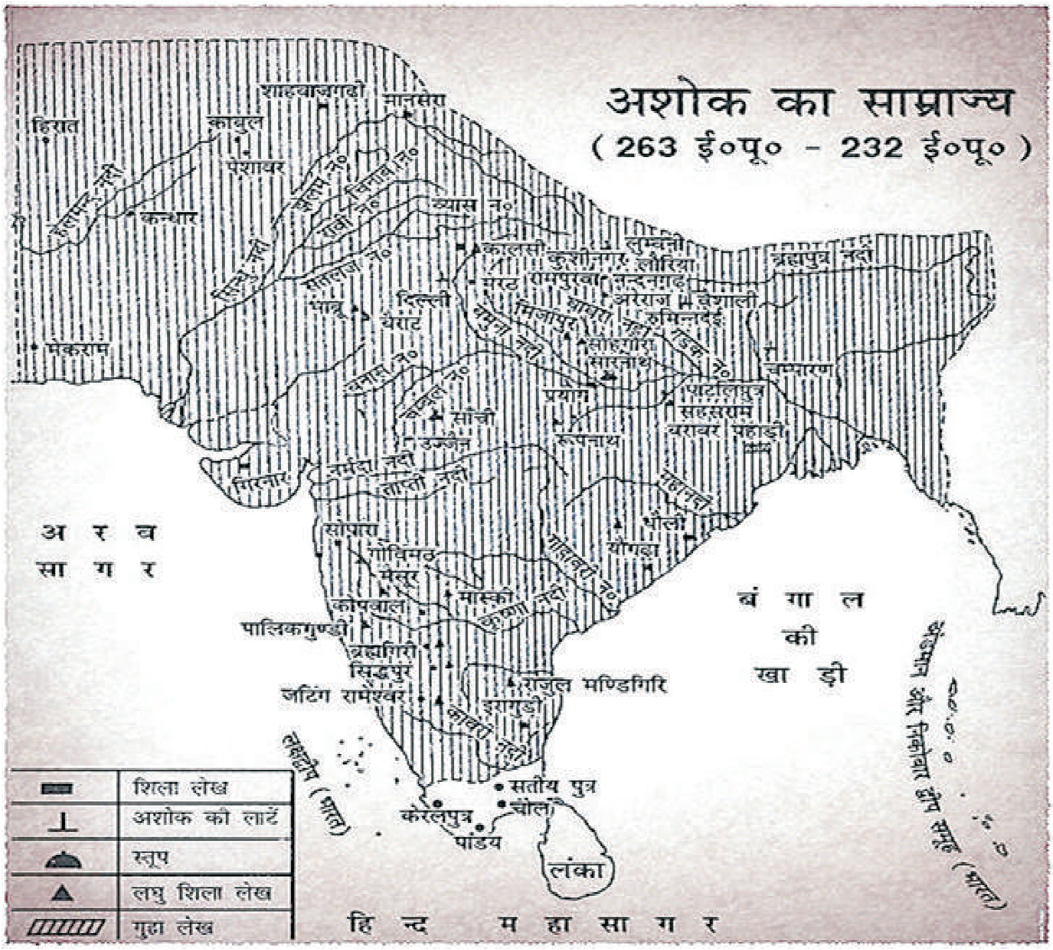

चित्र 1.6 अशोक का साम्राज्य

शुंग वंश –

इसकी स्थापना 185 ई. पू. में पुष्यमित्र शुंग ने की। मौर्य राजा वृहद्रथ का प्रधान सेनापति था। उसने उसे मार कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया। उसने 151 ई.पू. तक राज्य किया। उसने कई युद्धों में विजय प्राप्त की और अपने राज्यकाल में दो बार अश्वमेध यज्ञ किया। सुप्रसिद्ध संस्कृत वैयाकरण पतंजलि अश्वमेध यज्ञ में उसका पुरोहित था।

पुष्यमित्र के बाद शुंगवंश में जो प्रमुख राजा हुए, उनके नाम थे – अग्निमित्र, ज्येष्ठमित्र, भद्रक, भागवत और देवभूति। देवभूति को उसके अमात्य वासुदेव ने लगभग 73 ई.पू. में सिंहासन से उतार दिया।

सातवाहन वंश–

आंध्र (गोदावरी और कृष्णा नदियों की घाटी) में सिमुक नामक व्यक्ति ने लगभग 60 ई. पू. में सातवाहन वंश की नींव डाली। यह राजवंश आंध्र और सातवाहन दोनों नामों से विख्यात है।

सिमुक का राज्यकाल 37 ई.पू. तक माना जाता है। उसके उपरान्त शातकर्णि प्रथम ने सातवाहन वंश की शक्ति एवं सत्ता का विस्तार किया। शातकर्णि प्रथम ने अश्वमेध यज्ञ किया और समस्त दक्षिण भारत पर अपनी सार्वभौम सत्ता स्थापित की। उसकी राजधानी गोदावरी नदी के तट पर स्थित प्रतिष्ठान (आधुनिक पैठन) नामक नगरी थी। शातकर्णि प्रथम की मृत्यु के बाद शकों के आक्रमणों के फलस्वरूप सातवाहनों की शक्ति में ह्रास होने लगा और महाराष्ट्र में शक वंश का शासन आरम्भ हुआ, जो पश्चिमी क्षत्रप वंश कहा जाता है। सातवाहन वंश के तेईसवें शासक गौतमीपुत्र शातकर्णि ने पश्चिमी क्षत्रपों की शक्ति को नष्ट करके पुनः अपने वंश की शक्ति, समृद्धि और सत्ता स्थापित की। वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि ने उज्जैन के शक महाक्षत्रप रुद्रदामन प्रथम की पुत्री से विवाह किया। रुद्रदामन ने उससे वह समस्त भू–भाग छीन लिया, जिसे उसने पश्चिमी क्षत्रपों को पराजित करके जीता था। सातवाहन वंश के सत्ताइसवें शासक यज्ञश्री (शातकर्णि) ने उज्जयिनी के क्षत्रपों से कुछ भू–भागों को पुनः अपने अधिकार में करके अपनी वंशकीर्ति पुनः स्थापित की। यज्ञश्री ने कई प्रकार की मुद्राएँ चलाईं, जिनमें से कुछ पर जलपोत भी अंकित हैं। इससे

चित्र 1.7 सतवाहन काल के सिक्के

प्रतीत होता है कि उसका साम्राज्य समुद्र तक विस्तृत था। इस वंश के सभी शासक हिन्दू धर्म के अनुयायी थे। उन्होंने वैदिक यज्ञों और समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था को प्रतिष्ठित किया तथा विदेशी यवनों और शकों से संघर्ष करते रहे। उन्होंने बौद्ध तथा जैन विहारों तथा उपाश्रयों को भी प्रभूत अनुदान दिये। उनके शासन काल में वाणिज्य तथा व्यापार, कृषि एवं अन्य उद्योगों को विशेष प्रोत्साहन मिला तथा चाँदी, ताँबे, सीसे और कांसे की मुद्राओं का विशेष प्रचलन हुआ। उन्होंने ही सर्वप्रथम ब्राह्मणों को भूमि अनुदान (अग्रहार) देने की प्रथा आरम्भ की। सातवाहन राजाओं ने पश्चिमी दकन में अनेक चैत्य एवं विहार बनवाये, जिनमें कार्ले का चैत्य सुप्रसिद्ध है। 40 मीटर लम्बा 15 मीटर ऊँचा यह चैत्य वास्तुकला का अद्भुत उदाहरण है।

गुप्त साम्राज्य (275–550 ई.)

उत्तर भारत में कुषाण सत्ता 230 ई. के लगभग समाप्त हो गई, तब मध्य भारत का एक बड़ा भू–भाग शक मुरण्डों के शासन में आ गया, जो कि 250 ई. तक शासन करते रहे। उसके बाद 275 ई. में गुप्त वंश अस्तित्व में आया। इस वंश का संस्थापक श्रीगुप्त था। समुद्रगुप्त ने स्वयं को 'प्रयाग प्रशस्ति' में श्रीगुप्त का प्रपौत्र कहा है। श्रीगुप्त के बाद घटोत्कच गुप्त शासक हुआ। इसकी उपाधि 'महाराज' थी।

चन्द्रगुप्त प्रथम (320–335 ई.) :

घटोत्कच के बाद उसका पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम गुप्तवंश का शासक हुआ। इसने 'महाराजाधिराज' की पदवी धारण की। उसने लिच्छिवीवंशजा कुमारदेवी से विवाह किया। चन्द्रगुप्त प्रथम ने 319 ई. में एक संवत् चलाया, जो गुप्त संवत् के नाम से प्रसिद्ध है।

समुद्रगुप्त (335–380 ई.) :

चन्द्रगुप्त प्रथम ने समुद्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। उसका आदर्श 'दिग्विजय' और 'एकीकरण' था। वह साम्राज्यवाद में विश्वास रखता था। उसके दरबारी कवि हरिषेण ने उसकी सैनिक सफलताओं का विवरण इलाहाबाद प्रशस्ति अभिलेख में किया है। यह अभिलेख उसी स्तंभ पर उत्कीर्णित है, जिस पर अशोक का अभिलेख उत्कीर्णित है। इसके द्वारा जीते क्षेत्र को पांच समूहों में बांटा जा सकता है गंगा–यमुना दोआब के राज्य, पूर्वी हिमालय के राज्य, पूर्वी विन्ध्य क्षेत्र के आटविक राज्य, पूर्वी दकन व दक्षिण भारत के राज्य और शक एवं कुषाण राज्य। इलाहाबाद प्रशस्ति के अनुसार वह कभी भी युद्ध में नहीं हारा था। समुद्रगुप्त के पास एक शक्तिशाली नौसेना भी थी, जिससे वह विदेशों से सम्बन्ध सुदृढ़ कर सका। समुद्रगुप्त ने अवश्मेध यज्ञ भी किया। उसके सिक्कों पर 'अश्वमेध पराक्रमः' लिखा मिलता है। यह ललित कलाओं में भी निपुण था। उसे कविराज भी कहा गया है। वह संगीत में भी निपुण था। एक सिक्के पर उसकी आकृति वीणा बजाती हुई है। वह विष्णु का भक्त था, परन्तु दूसरे धर्मों का भी समान रूप से आदर करता था।

चन्द्रगुप्त द्वितीय (380–412 ई.) :

चन्द्रगुप्त द्वितीय समुद्रगुप्त का पुत्र था। उसका नाम देवराज तथा देवगुप्त भी मिलता है। उसने अपने साम्राज्य को विवाह सम्बन्धों और विजयों द्वारा बढ़ाया। उसने अपनी पुत्री प्रभावती का विवाह वाकाटक राजा रुद्रसेन से किया, जिसकी मृत्यु के पश्चात् प्रभावती अपने छोटे पुत्र को गद्दी पर बिठाकर राज्य की वास्तविक शासक बन गई। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पश्चिम मालवा व गुजरात को भी जीता। उज्जैन को उसने अपनी द्वितीय राजधानी बनाया। शक–विजय के पश्चात् उसने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की।

कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य (414–455 ई.) :

चन्द्रगुप्त द्वितीय के बाद उसका पुत्र कुमारगुप्त शासक बना। कुमार गुप्त को ही नालंदा विश्वविद्यालय का संस्थापक माना जाता है। उसका राज्य सौराष्ट्र से बंगाल तक फैला था। अपने राज्य के अंतिम दिनों में उसे पुष्यमित्र के विद्रोह का सामना करना पड़ा था।

स्कन्दगुप्त (455–467 ई.) :

स्कन्दगुप्त ज्येष्ठ पुत्र न होते हुए भी राज्य का उत्तराधिकारी बना। जूनागढ़ अभिलेख द्वारा ज्ञात होता है कि स्कंदगुप्त ने मौर्यों द्वारा निर्मित सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार

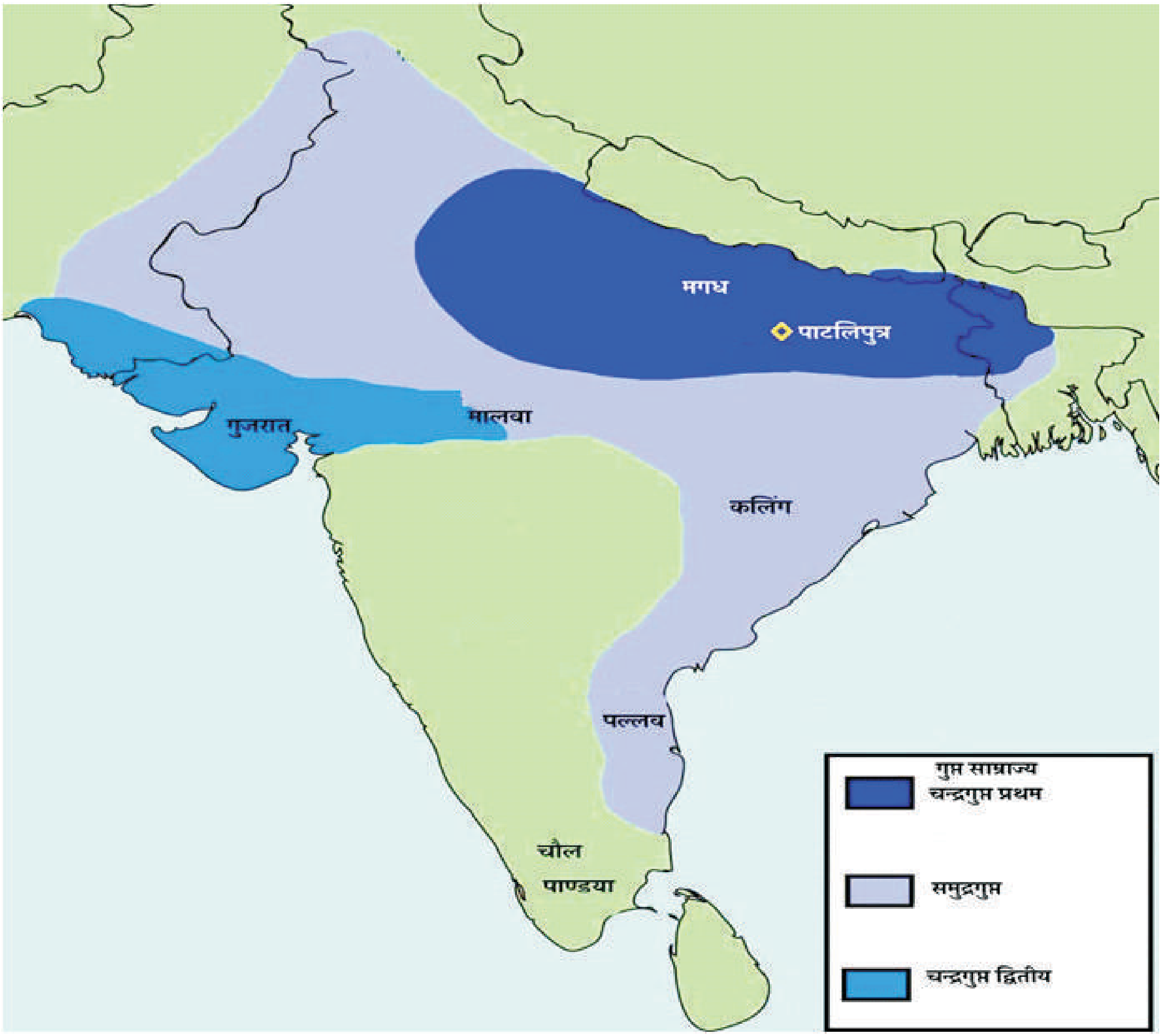

मानचित्र 1.8 गुप्त साम्राज्य

करवाया था। जूनागढ़ अभिलेख में इस बात का उल्लेख है कि सिंहासन पर बैठने के समय स्कंदगुप्त को म्लेच्छों के रूप में कुख्यात हूणों से जूझना पड़ा था। स्कंदगुप्त ने अंततः हूणों को पराजित कर दिया।

गुप्तवंश की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ :

भारत के सांस्कृतिक इतिहास में गुप्त वंश का बहुत महत्व है। गुप्त सम्राट वैदिक धर्म को मानने वाले थे। समुद्रगुप्त तथा कुमारगुप्त प्रथम ने तो अश्वमेध यज्ञ भी किया था। उन्होंने बौद्ध और जैन धर्म को भी प्रश्रय दिया। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय चीनी यात्री फाह्यान भारत आया था। उसके विवरणों से पता चलता है कि गुप्त साम्राज्य सुशासित था, उसमें अपराध बहुत कम होते थे और कर भार भी बहुत कम था। राजकाज की भाषा संस्कृत थी। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक तथा 'रघुवंशम्' महाकाव्य के रचयिता कालिदास, 'मृच्छकटिकम्' नाटक के लेखक शूद्रक, 'मुद्राराक्षस' नाटक के लेखक विशाखदत्त तथा सुविख्यात कोशकार अमरसिंह गुप्तकाल में ही हुए। रामायण, महाभारत तथा मनुसंहिता अपने वर्तमान रूप में गुप्त काल में ही सामने आई। गुप्तकाल में आर्यभट्ट, वराहमिहिर तथा ब्रह्मगुप्त ने गणित तथा ज्योतिर्विज्ञान के विकास में बहुत बड़ा योगदान दिया। इसी काल में दशमलव प्रणाली का आविष्कार हुआ, जो बाद में अरबों के माध्यम से यूरोप तक पहुँची। उस काल की वास्तुकला, चित्रकला तथा धातुकला के प्रमाण झाँसी और कानपुर के अवशेषों, अजन्ता की कुछ गुफाओं, दिल्ली में स्थित लौहस्तम्भ, नालंदा में 80 फुट ऊँची बुद्ध की ताँबे की मूर्ति तथा सुलतानगंज स्थित साढ़े सात फुट ऊँची बुद्ध की ताँबे की प्रतिमा से मिलते हैं।

गुप्तकालीन समाज :

गुप्तकालीन समाज परम्परागत रूप से चार वर्णों में विभक्त था। समाज में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोच्च था। उनके कर्त्तव्य माने जाते थे – अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ और दान। क्षत्रिय का कर्त्तव्य राष्ट्र की रक्षा करना था। वैश्य का कार्य व्यापार और वाणिज्य करना था। शूद्र सेवा प्रदाता था। गुप्तकाल में जातियों के विषय में व्यवसाय का बंधन शिथिल होने लगा था, फिर भी वर्णों का आधार गुण और कर्म न होकर जन्म ही था। स्त्रियों का समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान था। धार्मिक कृत्यों में पति के साथ पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य थी। स्त्री–शिक्षा का प्रचलन भी था। पर्दा प्रथा नहीं थी। उस समय आठ प्रकार के विवाहों का प्रचलन था। स्वयंवर

चित्र 1.9 समुद्रगुप्त द्वारा प्रचलित स्वर्ण मुद्रा

चित्र 1.10 चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा प्रचलित स्वर्ण मुद्रा

प्रथा भी विद्यमान थी। गुप्त काल में मिश्रित जातियाँ—मूर्द्धावशिक्त, करण, अम्बष्ठ, पारशव आदि उग्र थीं। कायस्थ गुप्त युग में एक वर्ग था, परन्तु बाद में यह एक जाति के रूप में अस्तित्व में आ गया। गुप्तकालीन साहित्य में नारी का आदर्श चित्रण है। पुत्र के अभाव में पुरुष की संपत्ति पर उसकी पत्नी का प्रथम अधिकार होता था।

वर्धन वंश (पुष्यभूति वंश) –

छठी शताब्दी ई. में दिल्ली के निकट थानेश्वर में पुष्यभूति से, जो शिव का उपासक था, इस वंश का प्रारम्भ हुआ। इस वंश में तीन राजा हुए – प्रभाकरवर्धन राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के बाद सिंहासन पर उसका बड़ा पुत्र राज्यवर्धन बैठा, किन्तु राज्याभिषेक के बाद राज्यवर्धन को युद्धों में उलझना पड़ा और बंगाल के गौड़ शासक शशांक द्वारा 606 ई. में उसका वध भी कर दिया गया। उसके बाद उसका छोटा भाई हर्षवर्धन (606–47 ई.) शासक बना, जिसने चालीस वर्ष तक राज्य करके अपनी कीर्ति का विस्तार किया। वह निस्संतान था, अतः उसकी मृत्यु के साथ ही पुष्यभूति वंश का अंत हो गया।

जिस समय हर्ष सिंहासन पर बैठा, राज्य की स्थिति अत्यन्त संकटपूर्ण थी। गौड़ (बंगाल) के राजा शशांक ने उसके बड़े भाई राज्यवर्धन का वध कर डाला था और उसकी छोटी बहिन राजश्री अपने प्राणों की रक्षा के लिए किसी अज्ञात स्थान पर चली गई थी। हर्षवर्धन ने शीघ्र ही अपनी बहिन को ढूँढ़ निकाला और कामरूप के राजा भास्करवर्मा से संधि करके शशांक के विरुद्ध एक बड़ी सेना भेज दी। यद्यपि दक्षिण में उसकी सेनाओं को लगभग 620 ई. में चालुक्य राजा पुलकेशिन द्वितीय ने नर्मदा के तट से पीछे खदेड़ दिया था। हर्ष के साम्राज्य की सीमाएँ उत्तर में हिमाच्छादित पर्वतों, दक्षिण में नर्मदा नदी के तट, पूर्व में गंजाम तथा पश्चिम में वल्लभी तक विस्तृत थीं। कन्नौज इस विशाल साम्राज्य की राजधानी थी।

हर्ष ने महाराजाधिराज की पदवी धारण की। वह शिव और सूर्य की उपासना करता था। बाद में उसका झुकाव महायान बौद्ध धर्म की ओर अधिक हो गया। वह प्रति पाँचवे वर्ष, प्रयाग में गंगा और यमुना के संगम पर, एक महोत्सव करके दान आदि करता था। चीनी यात्री ह्वेन्सांग भी इस प्रकार के छठे महोत्सव में सम्मिलित हुआ था।

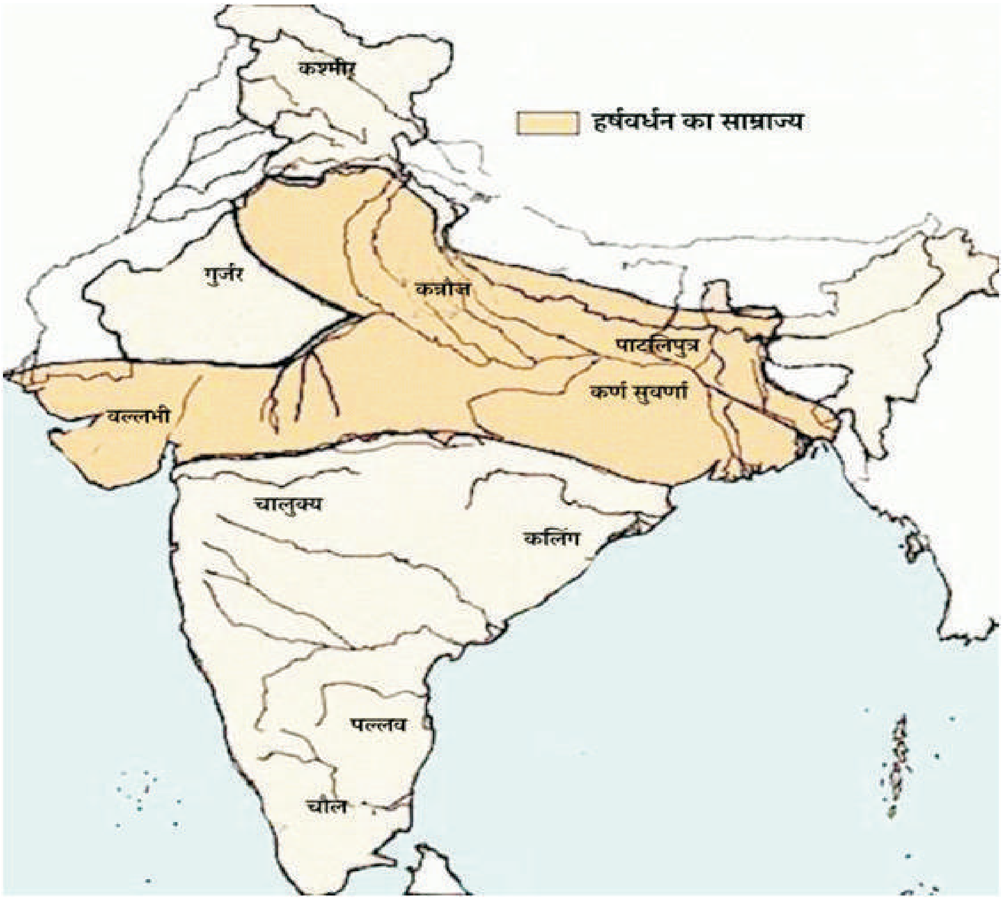

चित्र 1.11 हर्षवर्धन का साम्राज्य

चित्र 1.12 सम्राट हर्षवर्धन

पाल वंश –

इस वंश का उद्‌भव बंगाल में लगभग 750 ई. में गोपाल से माना जाता है। पालवंश का दूसरा शासक धर्मपाल इस वंश का सबसे महान् राजा था। उसने अपना राज्य कन्नौज तक विस्तृत किया और प्रतिहारों तथा राष्ट्रकूटों के साथ हुए त्रिकोणात्मक संघर्ष में भी अपने राज्य को सुरक्षित रखा। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी देवपाल ने भी कई युद्धों में विजय प्राप्त की। वह अपनी राजधानी को पाटलिपुत्र से बंगाल ले गया। उसकी राजसभा में सुमात्रा के राजा बालपुत्र देव का दूत आया था। देवपाल (810–850 ई.) के बाद पालवंश की राज्यशक्ति शासकों की निर्बलता तथा गुर्जर–प्रतिहार राजाओं के आक्रमणों के कारण क्षीण होने लगी। नवें राजा महीपाल प्रथम के राज्यकाल में चोल राजा राजेन्द्र प्रथम ने लगभग 1023 ई. में गंगा तक के प्रदेशों को जीत लिया। बारहवीं शताब्दी के मध्य तक पालवंश की शक्ति क्षीण हो गई।

पालवंशी राजा बौद्ध थे और उनके राज्यकाल में बौद्ध शिक्षा केन्द्रों की बड़ी उन्नति हुई। नालन्दा तथा विक्रमशिला के प्रसिद्ध महाविहारों को उनका संरक्षण प्राप्त था। प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु अतिशा दसवें पाल राजा नयपाल के राज्यकाल में तिब्बत के राजा के निमंत्रण पर वहाँ भी गया था। पालवंशी राजा कला तथा वास्तुकला के महान प्रेमी थे। उन्होंने धीमान तथा विटपाल जैसे महान शिल्पियों को संरक्षण प्रदान किया। पाल–युग के अनेक जलाशय दीनापुर जिले में अभी भी बचे हुए हैं।

राष्ट्रकूट वंश –

इस राजवंश की स्थापना दन्तिदुर्ग ने 736 ई. में की थी। उसने नासिक को अपनी राजधानी बनाया। इस वंश में 14 शासक हुए।

दन्तिदुर्ग वातापी के चालुक्यों के अधीन सामन्त था। उसने अंतिम चालुक्य शासक कीर्तिवर्मा द्वितीय को पराजित करके दक्षिण में चालुक्यों की सत्ता समाप्त कर दी। कृष्ण प्रथम ने एलोरा के सुप्रसिद्ध कैलाशनाथ मन्दिर का निर्माण कराया। वंश के चौथे शासक ध्रुव ने गुर्जर प्रतिहार शासक वत्सराज को पराजित किया और पाँचवे शासक गोविन्द तृतीय ने गुर्जर प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय और पाल शासक धर्मपाल को पराजित किया। उसने राष्ट्रकूटों के साम्राज्य को मालव प्रदेश से कांची तक विस्तृत कर दिया। छठा शासक अमोघवर्ष शान्तिप्रिय था, जिसने लगभग 64 वर्षों तक राज्य किया। उसी ने मान्यखेत (मालखेड) को राष्ट्रकूटों की राजधानी बनाया। अरब यात्री सुलेमान ने अमोघवर्ष की गणना विश्व के तत्कालीन चार महान् शासकों में की। कृष्ण द्वितीय तथा इन्द्र तृतीय ने कन्नौज के तत्कालीन शासक महीपाल को पराजित करके भागने को विवश कर दिया। बारहवें शासक कृष्ण तृतीय के शासनकाल में राष्ट्रकूटों का दक्षिण के चोल शासकों से एक दीर्घकालीन संघर्ष आरंभ हुआ।

राष्ट्रकूटों का पराभव कल्याणी के चालूक्यों द्वारा हुआ। चालुक्य शासक तैलप ने 973 ई. में इस वंश के कर्क द्वितीय को पराजित करके मान्यखेत पर अधिकार कर लिया। राष्ट्रकूट शासक वैदिक धर्म के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने कई भव्य मन्दिरों का निर्माण कराया। वे संस्कृत तथा कन्नड़ साहित्य के पोषक थे। अरबों ने इस वंश के शासकों को बल्हरा (बल्लराज) सम्बोधित किया है।

• गुर्जर–प्रतिहार वंश –

इस राज्य की स्थापना नागभट्ट नामक एक सामंत द्वारा 725 ई. में गुजरात में हुई, अतएव इसका नाम 'गुर्जर प्रतिहार' पड़ा। नागभट्ट प्रथम बड़ा वीर था। उसने सिंध की ओर से होने वाले अरबों के आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना किया। वत्सराज इस वंश का पहला शासक था, जिसने सम्राट की पदवी धारण की। वत्सराज के पुत्र नागभट्ट द्वितीय ने 816 ई. के लगभग गंगा की घाटी पर हमला किया और कन्नौज पर अधिकार कर लिया। वह अपनी राजधानी भी कन्नौज ले आया। नागभट्ट द्वितीय राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय से पराजित हुआ। उसके वंशज कन्नौज तथा आसपास के क्षेत्रों पर 1018–19 ई. तक शासन करते रहे। इस वंश का सबसे प्रतापी राजा भोज प्रथम था, जो मिहिरभोज के नाम से भी जाना जाता है और जो नागभट्ट द्वितीय का पौत्र था। अरब व्यापारी सुलेमान इसी के समय भारत आया था। अगला सम्राट महेन्द्रपाल था, जो 'कर्पूरमंजरी' नाटक के रचयिता महाकवि राजशेखर का शिष्य और संरक्षक था। महेन्द्र का पुत्र महिपाल राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय से बुरी तरह पराजित हुआ। महिपाल के समय गुर्जर–प्रतिहार राज्य का पतन होने लगा। उसके बाद के राजाओं – भोज द्वितीय, विनायकपाल, महेन्द्रपाल द्वितीय, देवपाल, महिपाल द्वितीय और विजयपाल ने 1013 ई. तक अपने राज्य को कायम रखा। महमूद गजनवी के हमले के समय कन्नौज का शासक राज्यपाल था। राज्यपाल बिना लड़े भाग खड़ा हुआ। बाद में उसने महमूद की अधीनता स्वीकार कर ली। इससे आसपास के राजपूत राजा बहुत नाराज हुए। महमूद गजनवी के लौट जाने पर कालिंजर के चन्देल राजा गण्ड के नेतृत्व में राजपूत राजाओं ने उसे मार डाला और उसके स्थान पर त्रिलोचनपाल को गद्दी पर बैठाया। कन्नौज में गहड़वाल अथवा राठौर वंश का उद्‌भव होने पर 11वीं शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश में बाड़ी के गुर्जर–प्रतिहार वंश को सदा के लिए उखाड़ दिया गया। गुर्जर प्रतिहार वंश के शासकों ने अरबों को आगे नहीं बढ़ने दिया।

चोल वंश (उत्तरवर्ती चोल राज्य) :

यह प्राचीन दक्षिणापथ के तीन प्रमुख राज्यों में से एक था। अन्य दो राज्य थे – पाण्ड्य और चेर अथवा केरल। अशोक के अभिलेखों में इस राज्य का वर्णन एक स्वतंत्र राज्य के रूप में हुआ है। चोल राज्य के निवासी तमिलभाषी थे। उन्होंने तमिल भाषा में उच्च कोटि के साहित्य लेखन को प्रोत्साहित किया। तिरुवल्लुवर रचित 'कुरल' इसका अच्छा उदाहरण है। करिकाल (लगभग 100 ई.) चोलवंश का एक राजा हुआ, जिसने पुहार या पुगार नगर की नींव डाली। उसने सिंहल से युद्ध किया और युद्धबंदियों से कावेरी नदी के किनारे सौ मील लम्बे बाँध का निर्माण कराया। वह चोलों की राजधानी को उरगपुर (उरयूर) से कावेरीपत्तनम् ले गया। चोल राजा विजयालय के पुत्र और उत्तराधिकारी आदित्य (लगभग 880–907 ई.) ने पल्लव नरेश अपराजित को हराया था। आदित्य के पुत्र परान्तक प्रथम ने पल्लवों की शक्ति को पूरी तरह कुचल दिया था। उसने पाण्ड्यों की राजधानी मदुरा पर भी अधिकार कर लिया था।

चोल राजराज प्रथम (985–1013 ई.) सम्पूर्ण मद्रास, मैसूर, कूर्ग और सिंहलद्वीप (श्रीलंका) को अपने अधीन करके पूरे दक्षिणी भारत का एकछत्र सम्राट बन गया था। उसने अपनी राजधानी तंजोर में भगवान शिव का राजराजेश्वर (वृहदेश्वर) मंदिर बनवाया। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी राजेन्द्र प्रथम (1016–44 ई.) के पास शक्तिशाली नौसेना थी, जिसने पेगू, मर्तबान तथा अण्डमान–निकोबार द्वीपों को जीता। उसने बंगाल और बिहार के शासक महिपाल से युद्ध किया। उसकी सेनाएँ कलिंग पार करके ओड़ (उड़ीसा), दक्षिण कोसल, बंगाल और मगध होती हुई गंगा तक भी पहुंची। इस विजय के उपलक्ष्य में उसने 'गंगैकोंड' की उपाधि धारण की। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी राजाधिराज (1044–54 ई.) चालुक्य राजा सोमेश्वर के साथ हुए कोप्पम के युद्ध में मारा गया, परन्तु वीर राजेन्द्र (1034–69 ई.) ने चालुक्यों को कुडल–संगमम् के युद्ध में परास्त कर पिछली हार का बदला ले लिया। चोलों में शीघ्र ही उत्तराधिकार के लिए युद्ध छिड़ गया। इसके फलस्वरूप सिंहासन राजेन्द्र कुलोतुंग प्रथम (1070–1122 ई.) को प्राप्त हुआ। राजेन्द्र कुलोत्तुंग की मां चोल राजकुमारी और पिता चालुक्य राज्य का स्वामी था। इस प्रकार कुलोत्तुंग ने चालुक्य–चोलों के एक नये वंश की स्थापना की। उसने चालीस वर्षों तक शासन किया।

चोल प्रशासन :

चोलों का प्रशासन ग्राम–पंचायत प्रणाली पर आधारित था। प्रशासन की सुविधा की दृष्टि से सम्पूर्ण चोल राज्य छः प्रांतों में बँटा हुआ था, जिनको 'मण्डलम्' कहा जाता था। मण्डलम् के उप–विभाग 'कोट्टम्' कोट्टम के उपविभाग 'नाडु', 'कुर्रम' और ग्राम होते थे। अभिलेखों में नाडु की सभा को नाट्टर और नगर की श्रेणियों को 'नगरतार' कहा गया है। गाँव के प्रतिनिधि प्रतिवर्ष नियमतः निर्वाचित होते थे। प्रत्येक मण्डलम् को तो स्वायत्तता

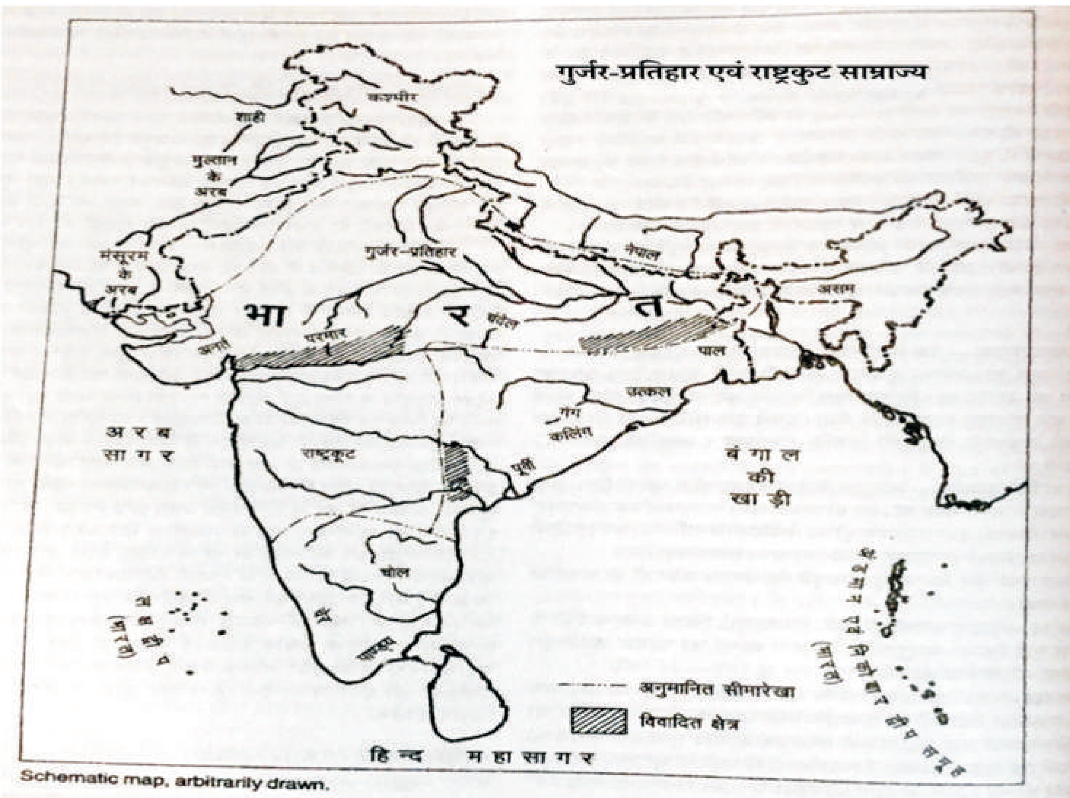

मानचित्र 1.13 राष्ट्रकूट, गुर्जर–प्रतिहार, चोल साम्राज्य

चित्र 1.14 चोल कालीन मन्दिर

चित्र 1.15 नटराज (शिव) की प्रतिमा

प्राप्त थी, लेकिन राजा को नियंत्रित करने के लिए कोई केन्द्रीय विधानसभा नहीं थी। भूमि की उपज का लगभग छठा भाग सरकार को लगान के रूप में मिलता था। लगान अनाज में या स्वर्ण मुद्राओं में दिया जा सकता था। चोल राज्य में प्रचलित सोने का सिक्का 'कासु' कहलाता था, जो 16 औंस का होता था। चोल राजाओं के पास विशाल स्थल सेना के साथ–साथ मजबूत जहाजी बेड़ा भी था। चोल राजाओं ने सिंचाई की बड़ी–बड़ी योजनाएँ पूरी की।

चोल कला – चोलों ने पल्लवों की स्थापत्य कला को आगे बढ़ाया। चोलों की द्रविड़ मंदिर शैली की कुछ विशेषताएँ हैं– वर्गाकार विमान, मण्डप, गोपुरम्, कलापूर्ण स्तम्भों से युक्त वृहद्सदन, सजावट के लिए पारम्परिक सिंह (चालि), ब्रैकेट तथा संयुक्त स्तम्भों आदि का होना। राजराज प्रथम का तंजौर का शिव मंदिर (राजराजेश्वर मंदिर) द्रविड़ शैली का एक शानदार नमूना है। दक्षिण भारत में नहरों की प्रणाली चोलों की देन है। चोल मंदिरों में चिदम्बरम् और तंजौर के मंदिर सर्वोत्कृष्ट हैं। चोल युग की नटराज शिव की कांसे की मूर्तियां भी सर्वोत्कृष्ट मानी जाती हैं। मंदिरों की गोपुरम् शैली का विकास इसी युग में हुआ।

समाज – चोल राजा शैव धर्मानुयायी थे। राजाधिराज के लेखों में अश्वमेध यज्ञ का भी उल्लेख है। समाज में स्त्रियां सम्पत्ति की स्वामिनी होती थी। दास और देवदासी प्रथा भी प्रचलित थी।

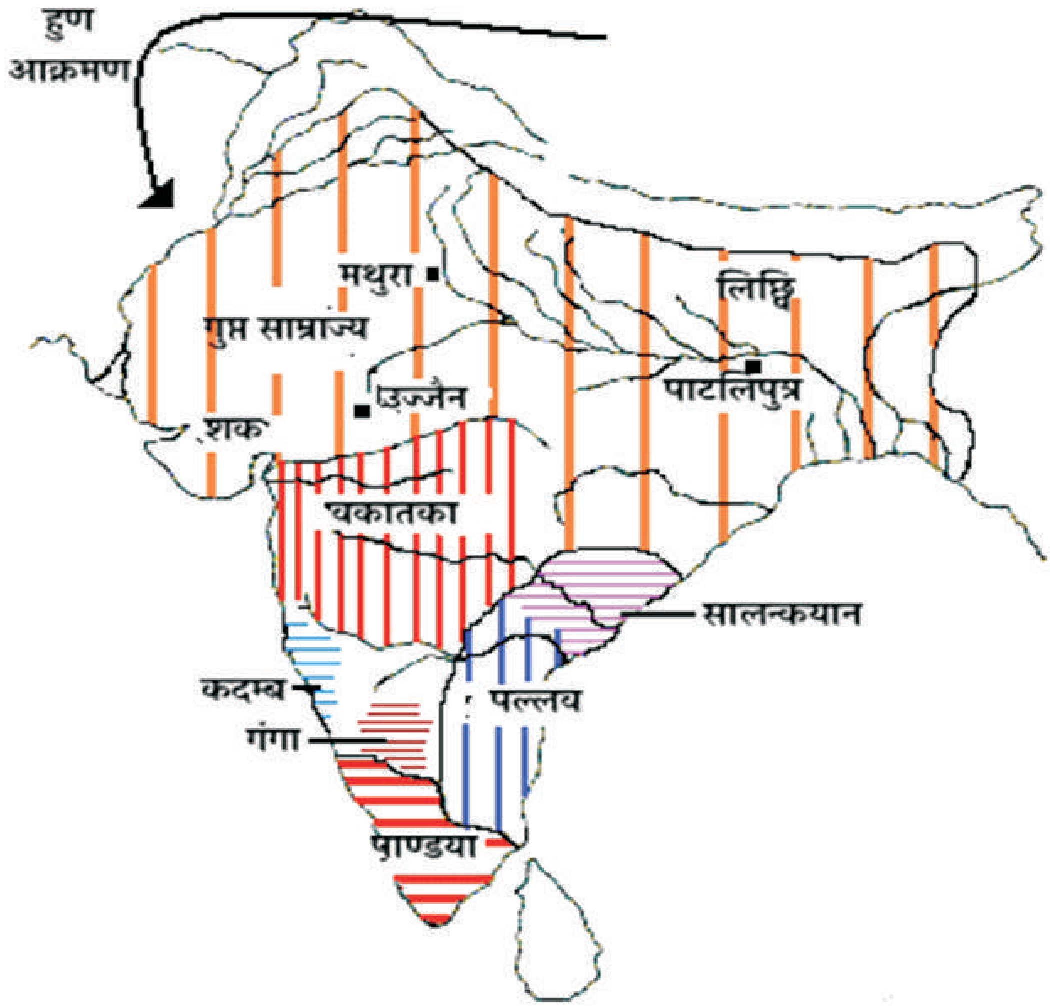

मानचित्र 1.16 पल्लव साम्राज्य

पल्लव वंश :

इस वंश के शासक अर्काट, मद्रास, त्रिचनापल्ली तथा तंजौर के आधुनिक जिलों पर राज्य करते थे। शिलालेखों में पहले पल्लव राजा का उल्लेख कांची के विष्णुगोप का मिलता है। पल्लवों में सिंहविष्णु छठी शताब्दी ई. के उत्तरार्द्ध में सिंहासन पर बैठा। उसके बाद लगभग दो शताब्दियों तक पल्लवों ने राज्य किया। प्रमुख पल्लव राजाओं के नाम महेन्द्रवर्मा प्रथम (लगभग 600–25 ई.), नरसिंहवर्मा प्रथम, महेन्द्रवर्मा द्वितीय, परमेश्वरवर्मा, नरसिंहवर्मा द्वितीय, परमेश्वरवर्मा द्वितीय, नन्दीवर्मा, नन्दीवर्मा द्वितीय तथा अपराजित।

महेन्द्रवर्मा महान् वास्तु–निर्माता था। उसने पत्थरों को तराशकर अनेक मंदिर बनवाये। महेन्द्रवर्मा प्रथम ने 'मत्त विलास प्रहसन' नामक नाटक भी लिखा। उसने 'महेन्द्र' तालाब भी खुदवाया। उसे लगभग 610 ई. में चालुक्य राजा पुलकेशिन द्वितीय ने पराजित कर दिया। महेन्द्र के पुत्र तथा उत्तराधिकारी नरसिंहवर्मा (महामल्ल) ने 642 ई. में पुलकेशिन द्वितीय को परास्त कर दिया और उसकी राजधानी वातापी पर अधिकार कर लिया, परंतु चालुक्यों ने 655 ई. में इस हार का बदला ले लिया। चालुक्य राजा विक्रमादित्य प्रथम ने पल्लव राजा परमेश्वरवर्मा को पराजित कर उसकी राजधानी कांची पर अधिकार कर लिया। प्रारम्भिक पल्लव राजाओं ने मामल्लपुरम् या महाबलीपुरम् नगर की स्थापना की और वहाँ पर पाँच रथ मंदिरों का निर्माण कराया। यहाँ चट्टानों को तराशकर मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गयी हैं। कांची में भी पल्लव राजाओं ने मंदिर बनवाये। पल्लव शासकों में कुछ विष्णु के उपासक थे और कुछ शिव के।

मानचित्र 1.18 पल्लवकालीन मंदिर

चालुक्य वंश :

चालुक्यवंशी पुलकेशिन प्रथम ने अश्वमेध यज्ञ किया था। वातापी के चालुक्यों का तेरह वर्षो के व्यवधान (642–655 ई.) को छोड़कर 550 ई. से लेकर 757 ई. तक शासन किया। चालुक्य नरेशों में चौथा पुलकेशिन द्वितीय सबसे अधिक प्रख्यात है। उसने 608 ई. में शासन ग्रहण किया। उसका राज्य–विस्तार उत्तर में नर्मदा से लेकर दक्षिण में कावेरी नदी तक था। 642 ई. में वह पल्लव नरेश नरसिंहवर्मा द्वारा पराजित हुआ। पुलकेशिन के पुत्र विक्रमादित्य प्रथम ने चालुक्य–शक्ति पुनः प्रतिष्ठित की। चालुक्य नरेश विक्रमादित्य द्वितीय ने 973 ई. में राष्ट्रकूट नरेश को परास्त कर दिया और कल्याणी को अपनी राजधानी बनाकर नये चालुक्य राज्य की स्थापना की। यह नया राज्य 973 ई. से 1200 ई. तक सत्तासीन रहा। कल्याणी के इस चालुक्य राज्य का एक लम्बे अर्से तक तंजौर के चोलवंशी शासकों से संघर्ष चला। सत्याश्रय नामक चालुक्य राजा को चोल नरेश राजराज ने परास्त किया। चालुक्य सोमेश्वर प्रथम ने इस अपमान का बदला न केवल चोल नरेश राजाधिराज को कोप्पम् के युद्ध में करारी हार देकर लिया, वरन् इस युद्ध में उसने राजाधिराज का वध भी कर दिया। सातवें नरेश विक्रमादित्य षष्ठ ने, जो विक्रमांक के नाम से भी विख्यात था, कांची पर अधिकार कर लिया और प्रसिद्ध कवि विल्हण को संरक्षण प्रदान किया। विल्हण ने विक्रमादित्य के जीवन पर आधारित 'विक्रमांकदेवचरितं' नामक ग्रंथ लिखा। वातापी और कल्याणी के चालुक्य नरेशों ने हिन्दू होने पर भी बौद्ध और जैन धर्म को प्रश्रय दिया। चालुक्य राजाओं ने अनेक मंदिरों का निर्माण कराया। याज्ञवल्क्य स्मृति की 'मिताक्षरा' व्याख्या के लेखक प्रसिद्ध विधिवेत्ता विज्ञानेश्वर चालुक्यों की राजधानी कल्याणी में ही रहते थे। 'मिताक्षरा' को हिन्दू कानून का एक अधिकारिक ग्रंथ माना जाता है।

(iii) बाह्य आक्रमण एवं आत्मसातीकरण – शक, हूण एवं कुषाण :

शकः– मध्य एशिया की लड़ाकू जनजाति थी, जिसने पश्चिमी अफगानिस्तान और बलूचिस्तान के सारे प्रदेश पर अधिकार कर लिया। यहाँ से शक बोलन दर्रे से होकर लगभग 71 ई.पू. में भारत आए। 'रामायण' एवं 'महाभारत' में शक बस्तियों को कम्बोजों और यवनों के साथ रखा गया है। कालकाचार्य कथानक में भारत पर शकों के आक्रमण का उल्लेख मिलता है, जिसमें उन्हें सगकुल (शक–कुल) कहा गया है। सिन्धु प्रदेश को जीतकर उन्होंने सौराष्ट्र में शक–शासन की स्थापना की। मुद्राओं और लेखों से स्पष्ट है कि इनकी एक शाखा ने उत्तरापथ और मथुरा में अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया और कालान्तर में वे अवन्ति, सौराष्ट्र और महाराष्ट्र में फैल गये।

तक्षशिला के शक शासकों में मावेज एवं एजेज के नाम आते हैं। तक्षशिला में शक शक्ति का विनाश, पल्लवों द्वारा हुआ। हमामश और हगान मथुरा के प्रारम्भिक शक क्षत्रप थे। मथुरा से प्राप्त सिंह–शीर्षक–लेख में बाद के शक शासक राजबुल को महाक्षत्रप कहा गया है। मथुरा के शकों ने पूर्वी पंजाब तक अपनी सीमा का विस्तार कर लिया था। मथुरा में शक शक्ति का विनाश कुषाणों द्वारा हुआ। पश्चिमी भारत में शकों के क्षहरात वंश के भूमक तथा नहपान दो शासक ज्ञात हैं। इन शक शासकों ने सातवाहनों से कुछ प्रदेश जीते और महाराष्ट्र काठियावाड़ और गुजरात पर शासन किया। नहपान के समय भारत तथा पश्चिमी देशों के बीच समृद्ध व्यापारिक सम्बन्ध कायम था।

जोगलथाम्बी नामक स्थान से मिले सिक्कों से यह प्रमाणित होता है कि नहपान गौतमीपुत्र शातकर्णि से पराजित हुआ था। नासिक लेख में गौतमीपुत्र शातकर्णि को क्षहरात वंश का उन्मूलक कहा गया है। उज्जयिनी तथा काठियावाड़ के शक शासकों में चस्टन का नाम आता है, जिसने उज्जयिनी में शक राजवंश की स्थापना की थी। इस वंश के शासकों ने अपने लेखों तथा मुद्राओं पर शक संवत् का उपयोग किया था। चस्टन का पौत्र रूद्रदामन महत्त्वपूर्ण शासक हुआ, जिसके बारे में जानकारी जूनागढ़ लेख से प्राप्त होती है। रूद्रदामन का साम्राज्य पूर्वी–पश्चिमी मालवा, द्वारका, जूनागढ़, साबरमती नदी मारवाड़, सिन्धु–घाटी, उत्तरी कोंकण एवं विन्ध्य पर्वत तक फैला हुआ था। मुद्राओं से प्रदर्शित होता है कि चस्टन का वंश 305 ई. में समाप्त हो गया।

हूणः

हूण मध्य एशिया की एक बर्बर जाति थी, जिसने शकों की भांति भारतवर्ष में उत्तर–पश्चिमी सीमा की ओर से प्रवेश किया। ये 'दैत्य' भी पुकारे जाते थे। सर्वप्रथम 458 ई. के लगभग स्कन्दगुप्त के समय इनका आक्रमण हुआ, जिसमें उनकी पराजय हुई। कालान्तर में तोरमाण नामक सरदार ने गुप्त साम्राज्य को नष्ट–भ्रष्ट करके पंजाब, राजपूताना, सिन्ध और मालवा पर अधिकार कर 'महाराजाधिराज' की पदवी धारण की। तोरमाण का पुत्र महिरकुल था जिसका राज्य 510 ई. से आरम्भ हुआ। स्यालकोट इसकी राजधानी थी। बौद्ध भिक्षुओं से महिरकुल को घृणा थी। उसने अनेक मठों एवं स्तूपों को नष्ट किया। मालवा के शासक यशोधर्मा ने इसे पराजित किया। पराजित होने के बाद यह कश्मीर चला गया और कश्मीर में अपना राज्य कायम किया। हूणों के आक्रमण के कारण गुप्त साम्राज्य नष्ट हो गया और भारत की राजनीतिक एकता समाप्त हो गयी। देश पुनः छोटे–छोटे टुकड़ों में बँट गया।

कुषाण वंश :

कुषाणों को यूचि या तौचेरियन भी कहा जाता है। यूचि कबीला पांच भागों में बंट गया था। इन्हीं में से एक कबीले ने भारत के कुछ भागों पर शासन किया।

कुजुल कडफिसस प्रथम (15ई.–65 ई.) : यह अपनी जाति के गौरव का संस्थापक था। इसने दक्षिणी अफगानिस्तान, काबुल, कन्धार और पार्थिया के एक भाग को अपने राज्य में मिला लिया। इसने वैदिक धर्म को अंगीकार किया।

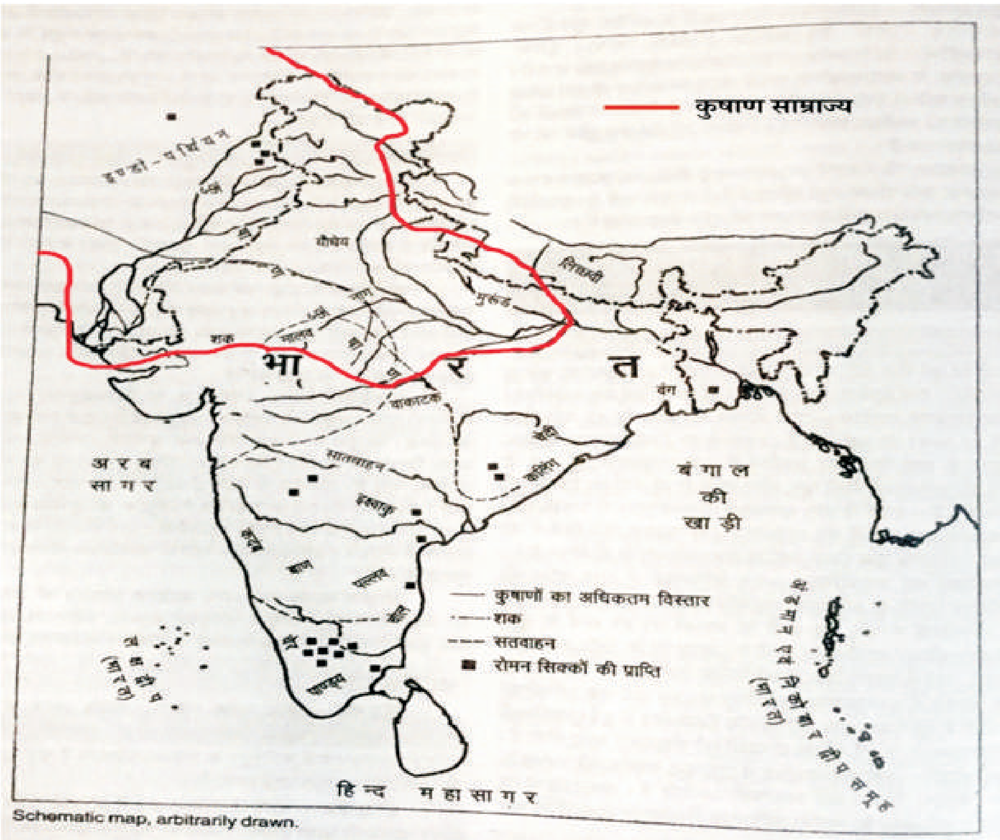

मानचित्र 1.19 कुषाण साम्राज्य

विम कडफिस द्वितीय (65–75 ई.) : भारत के एक विशाल क्षेत्र पर इसका राज्य था। यह शैव मत का अनुयायी था। इसकी कुछ मुद्राओं पर त्रिभुज, त्रिशूलधारी, व्याघ्रचर्माग्राही, नन्दी अभिमुख भगवान शिव की आकृति अंकित है। इसने भारत में पहली बार अपने नाम के सोने के सिक्के चलाए।

कनिष्क :

यह भारत के प्रमुख कुषाण राजाओं में माना जाता है। परम्परा के अनुसार इसके समय में कश्मीर के कुंडलवन में आचार्य पार्श्व की अध्यक्षता में चौथी बौद्ध संगीति सम्पन्न हुई थी। इसकी प्रथम राजधानी पेशावर (पुरुषपुर) एवं दूसरी राजधानी मथुरा थी। इसने 78 ई. में नया संवत् चलाया, जिसे शक संवत् के नाम से जाना जाता है। कनिष्क ने कश्मीर को जीतकर वहां 'कनिष्कपुर' नामक नगर बसाया। उसने काशगर, यारकन्द व खोतान पर भी विजय प्राप्ता की। महास्थान (बोगरा) में पायी गयी सोने की मुद्रा पर कनिष्क की एक खड़ी मूर्ति अंकित है। मथुरा जिले में कनिष्क की एक प्रतिमा मिली है। इस प्रतिमा में उसने घुटने तक चोगा और भारी बूट पहने हुए हैं। एक तांबे के सिक्के पर कनिष्क को वेदी पर बलि देते दिखाया गया है। कनिष्क के राजदरबार में पार्श्व, वसुमित्र, अश्वघोष जैसे बौद्ध विचारक, नागार्जुन, जैसे प्रख्यात गणितज्ञ और चरक जैसे चिकित्सक विद्यमान थे। बौद्ध धर्म की महायान शाखा का अभ्युदय और प्रचार कनिष्क के समय में ही हुआ।

चित्र 1.20 कनिष्क

उत्तर भारत में कुषाण शासकों की सत्ता लगभग 230 ई. तक बनी रही। इस समय रोम से भारत का व्यापार काफी लाभप्रद स्थिति में था, जिससे भारत में आर्थिक समृद्धि आई।

आत्मसातीकरण –

शक, हूण एवं कुषाण विदेशी जातियाँ थी। इन्होंने शासन तो किया, परन्तु धीरे–धीरे इनका भारतीय समाज एवं संस्कृति में आत्मसातीकरण भी हो गया। भारतीयों की उदार प्रवृत्ति के कारण ये बर्बर कबीलाई जातियाँ जो समाज का अंग बन गईं। कुषाण शासकों में तो वैदिक धर्म पालन एवं शैव मत की निष्ठा सर्वमान्य रही। कनिष्क द्वारा की गई बौद्ध धर्म की सेवा तो उसे भारत में महान् राजाओं में अधिष्ठित करती है।

चित्र 1.21 कुषाणकालीन सिक्के

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. महाभारत, बौद्ध साहित्य एवं चाणक्य के अर्थशास्त्र से महाजनपदों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

2. चन्द्रगुप्त मौर्य के विशाल साम्राज्य में काबुल, हेरात, कंधार, बलूचिस्तान, पंजाब, गंगा–यमुना का मैदान, बिहार, बंगाल, गुजरात, विन्ध्य तथा कश्मीर के भू–भाग सम्मिलित थे।

3. अशोक ने मनुष्य की नैतिक उन्नति हेतु जिन आदर्शों का प्रतिपादन किया उन्हें 'धम्म' कहा गया। उसके अनुसार पाप कर्म से निवृत्ति, विश्व–कल्याण, दया, दान, सत्य एवं कर्मशुद्धि ही धम्म है।

4. अशोक के अधिकांश अभिलेख ब्राह्मी लिपि में हैं, जबकि पश्चिमोत्तर भारत से प्राप्त उसके अभिलेख अरमाइक से निष्पन्न खरोष्ठी लिपि में है। अशोक के अभिलेखों को पढ़ने में पहली बार सफलता जेम्स प्रिंसेस को प्राप्त हुई।

5. कौटिल्य के अनुसार राज्य के सात अंग राजा, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, सेना और मित्र हैं।

6. सातवाहन वंश के सभी शासक हिन्दू धर्म के अनुयायी थे। उन्होंने वैदिक यज्ञों और वर्णाश्रम व्यवस्था को प्रतिष्ठित किया तथा यवनों और शकों से संघर्ष किया।

7. इलाहाबाद प्रशस्ति के अनुसार समुद्रगुप्त कभी युद्ध नहीं हारा था।

8. आर्यभट्ट, वराहमिहिर तथा ब्रह्मगुप्त ने गुप्तकाल में गणित तथा ज्योर्तिविज्ञान के विकास में बहुत बड़ा योगदान दिया।

9. गुर्जर–प्रतिहार वंश की स्थापना नागभट्ट नामक एक सामंत ने 725 ई. में की थी। उसके राज्य की स्थापना गुजरात में हुई, अत एवं उसके वंश का नाम गुर्जर–प्रतिहार पड़ा।

10. चोल शासक राजराज प्रथम ने अपनी राजधानी तंजोर में भगवान शिव का राजराजेश्वर (वृहदेश्वर) मंदिर बनवाया। चोल युग के कांसे की शिव मूर्तियाँ कला की दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध हैं।

11. साहवाहन गौतमीपुत्र सातकर्णि को नासिक लेख में शकों को नष्ट करने के कारण 'क्षहरात वंश उन्मूलक' कहा गया है।

12. कनिष्क ने 78 ई. में नया संवत् चलाया, जिसे शक संवत् के नाम से जाना जाता है।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न :–

1. राजस्थान के प्रमुख महाजनपद कौन–कौन से हैं ?
2. बिन्दुसार के समय आए यूनानी राजदूत का क्या नाम था ?
3. पुराणों में अशोक का क्या नाम मिलता है ?
4. अंतिम मौर्य सम्राट कौन था ?
5. 'समाहर्त्ता' नामक अधिकारी का क्या कार्य था ?
6. कौटिल्य की पुस्तक का नाम बताइये ?
7. पतंजलि किस शासक के काल में हुए थे ?
8. सातवाहन वंश के सबसे प्रतापी राजा का नाम क्या था ?
9. 'इलाहाबाद प्रशस्ति' का लेखक कौन था? वह किस शासक का दरबारी कवि था?
10. स्कन्दगुप्त ने मौर्यों द्वारा निर्मित किस झील का जीर्णोद्धार करवाया?
11. हर्षवर्धन की साहित्यिक रचनाओं के नाम बताइये।
12. पालवंशी राजा किस धर्म के अनुयायी थे ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. महाजनपदों में उल्लिखित गणराज्यों के नाम बताइये।
2. अशोक के 'धम्म' का सार लिखिए।
3. समुद्रगुप्त के सांस्कृतिक योगदान को स्पष्ट कीजिये।
4. राष्ट्रकूट वंश का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
5. चोल प्रशासन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
6. पल्लव वंश के बारे में आप क्या जानते हैं ?
7. कनिष्क का योगदान बताइये।

निबन्धात्मक प्रश्न :–

1. महाजनपदों का उल्लेख करते हुए राजस्थान के प्रमुख जनपदों का परिचय दीजिए।
2. मौर्यकालीन प्रशासन एवं समाज का वर्णन कीजिए।
3. गुप्तवंश के प्रमुख शासकों का वर्णन करते हुए इस काल की सांस्कृतिक उपलब्धियों पर एक लेख लिखिए।
4. दक्षिण के चोल एवं चालुक्य राज्यों का सविस्तार वर्णन करें।